[2003] 2 उम.नि.प. 259

सत्य नारायण शर्मा

बनाम

राजस्थान राज्य

25 सितम्बर, 2001

न्यायमूर्ति के. टी. थॉमस और न्यायमूर्ति एस. एन. वरियावा

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988(1988 का 49) – धारा 19 [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973(1974 का 2) – धारा 482]– विचारण का रोका जाना – भ्रष्टाचार के आरोपों के संबंध में लोक सेवक के विचारण को किसी न्यायालय द्वारा किसी भी शक्ति का प्रयोग करते हुए रोका नहीं जा सकता – उच्च न्यायालय भी दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अपनी अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करते हुए ऐसा रोकादेश पारित नहीं कर सकता ।

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988(1988 का 49) – धारा 19(3)(ख) [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973(1974 का 2) – धारा 482 और 397] – कार्यवाहियों को रोकने के संबंध में प्रतिषेध – मंजूरी देने में हुई त्रुटि, लोप अथवा अनियमितता सामान्यतः कार्यवाहियों को रोकने का आधार नहीं होगी – मंजूरी के संबंध में आरंभिक प्रक्रम पर आक्षेप उठाया जाना भी यह अभिनिर्धारित करने का आधार नहीं हो सकता कि न्याय की विफलता हुई है – मंजूरी के आधार पर आक्षेप को नामंजूर करने से न्याय की विफलता नहीं होती ।

प्रस्तुत मामले में विचारण न्यायालय ने तारीख 8 जुलाई, 1984 को अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468 और 471 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 5(2) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए संज्ञान किया । तब अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष 1984 का प्रकीर्ण आवेदन सं. 578 फाइल किया और विचारण का रोकादेश प्राप्त किया । विचारण में रोकादेश प्राप्त करने के उपरांत प्रकीर्ण आवेदन की सुनवाई को समय-समय पर स्थगित करवाया गया । इस पद्धति से अपीलार्थी ने विचारण को सात वर्षों तक सफलतापूर्वक विलम्बित किया । यह अपील तारीख 25 अप्रैल, 2001 के उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन गठित विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 8 जुलाई, 1994 के आदेश को अभिखंडित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन फाइल किया गया दांडिक प्रकीर्ण आवेदन खारिज किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 19(3)(ख) में इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को रोकने के विरुद्ध प्रतिषेध अन्तर्विष्ट हैं, किन्तु यह मात्र मंजूरी देने के पहलू तक ही निर्बंधित है । मंजूरी देने में हुई त्रुटि, लोप अथवा अनियमितता इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को रोकने का तब तक आधार नहीं होगी "जब तक कि इस बात का समाधान नहीं हो जाता कि ऐसी त्रुटि, लोप अथवा अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है ।" यह अवधारित करने के लिए कि क्या न्याय की ऐसी कोई विफलता हुई थी, यह आज्ञापक है कि न्यायालय इस तथ्य का ध्यान रखेगा कि क्या उस पहलू के संबंध में आक्षेप कार्यवाहियों के किसी पूर्ववर्ती प्रक्रम पर उठाया जा सकता था या उठाया जाना चाहिए । मात्र यह कारण कि मंजूरी के संबंध में आक्षेप आरंभिक प्रक्रम पर उठाए गए थे, यह अवधारित करने का आधार नहीं है कि न्याय की विफलता हुई थी । यदि विशेष न्यायाधीश ने उस पहलू के संबंध में उठाए गए आक्षेप को नामंजूर कर दिया है तो साधारण रूप से यह कल्पनातीत होता है कि न्याय की कोई विफलता हो सकती थी, भले ही उन आक्षेपों की उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि कर दी गई हो । किसी आक्षेप को मंजूरी के आधार पर उलट देने से मामला अभियुक्त के लिए हानिकारक रूप से समाप्त नहीं हो जाता । यह केवल अदालत को लोक सेवक के विरुद्ध अभिकथनों की न्यायिक रूप से परीक्षा करने की शक्ति प्रदान करता

है । अतः यह दर्शित करना एक कठिन कार्य है कि मंजूरी के मामले में किसी आक्षेप को रोकने के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है । इसका परिणाम यह है: उच्च न्यायालय सामान्यतः इस आधार पर रोकादेश प्रदान नहीं करेगा । उपधारा के खण्ड (ग) में प्रतिषेध को निरपवाद शब्दों में व्यक्त किया गया है । यह इस प्रकार है : "कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन किसी अन्य आधार पर कार्यवाहियां नहीं रोकेगा ।" मात्र इस तथ्य का कि उपरोक्त के साथ-साथ एक अन्य प्रतिषेध जुड़ा हुआ था, यह अर्थ नहीं है कि खण्ड (ग) में अंतर्विष्ट विधायी वर्जन केवल उस स्थिति तक सीमित है, जब उच्च न्यायालय पुनरीक्षण संबंधी शक्तियों का प्रयोग करता है । यह अधिनियमिति का गलत निर्वचन होगा, यदि कोई न्यायालय धारा 19(3) के खण्ड (ग) का इस प्रकार अर्थान्वयन करे कि उसमें उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग के अंतर्गत रोकादेश करने की शक्ति है । अनेक उच्च न्यायालय उक्त वर्जन को अनदेखा करते हुए विशेष न्यायाधीशों के समक्ष लम्बित ऐसी कार्यवाहियों को रोकने के आदेश प्रदान कर रहे हैं जिनमें अधिनियम के अधीन अपराध अंतर्वलित हैं । यह संभवतः अधिनियम की धारा 19 की उपधारा (3) के खण्ड (ग) में अंतर्विष्ट विधायी वर्जन को न समझने के कारण होगा क्योंकि धारा 19 का शीर्षक "अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी का आवश्यक होना" है । यह और भी उपयुक्त होता यदि उपधारा (3) में अन्तर्विष्ट प्रतिषेध पृथक् धारा में एक पृथक् सुस्पष्ट शीर्षक के साथ सम्मिलित किया जाता । वर्तमान स्थिति में भी, वह उपधारा में अन्तर्विष्ट विधायी प्रतिषेध को अनदेखा करने का कोई आधार नहीं है । (पैरा 26,27,28 और 29)

इस मामले में जो कुछ हुआ है वह बड़ी संख्या में मामलों में घटित हो रहा है । लोक कार्यालयों में भ्रष्टाचार प्रबल हो रहा है । जब लोक सेवकों को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन अभियोजित करने की ईप्सा की जाती है, तब दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन पुनरीक्षण फाइल करके अथवा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन फाइल करके विचारणों के रोकादेश प्राप्त कर लिए जाते हैं और पक्षकार सफलतापूर्वक विचारणों को विलम्बित करवाते रहते हैं । न्यायालयों द्वारा रोकादेश उक्त अधिनियम की धारा 19(3)(ग) के उपबंधों पर विचारण किए बिना और/अथवा उसके उल्लंघन में प्रदान कर दिए जाते हैं । इससे लोक सेवकों के विरुद्ध भ्रष्टाचार का मुकाबला करने में प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । अतः यह आवश्यक हो गया है कि कानून को दोहराया जाए । अतः इस आवेदन की मात्र विधि के इस प्रश्न के संबंध में सुनवाई की गई है कि क्या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन विचारण रोके जा सकते हैं । (पैरा 5)

विधानमंडल ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19(1)(ग) में "कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन किसी अन्य आधार पर कार्यवाहियों को नहीं रोकेगा" शब्दों को जोड़कर स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित किया है कि कोई रोकादेश किसी आधार पर किसी शक्ति का प्रयोग करके प्रदान नहीं किया जा सकता था । अतः यह उस स्थिति में भी लागू होगा जिसमें कोई न्यायालय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अन्तर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करता है । एक अन्य कारण भी है जिसके कारण यह निवेदन स्वीकार नहीं किया जा सकता कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित अधिकारिता पर लागू नहीं होगी । दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 19, "इस संहिता में किसी बात के होते हुए भी" शब्दों से आरंभ होती है । अतः अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है भले ही दण्ड प्रक्रिया संहिता में प्रतिकूल उपबंध हों । दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 में यह उपबंध नहीं है कि अन्तर्निहित अधिकारिता का प्रयोग किसी अन्य अधिनियमिति में किसी अन्य उपबंध के होते हुए भी किया जा सकता है । अतः यदि किसी अधिनियमिति में विशिष्ट वर्जन है तो उस वर्जन को समाप्त करने के लिए अन्तर्निहित अधिकारिता का प्रयोग नहीं किया जा सकता । इस निवेदन में कोई सार नहीं है कि धारा 19 किसी उच्च न्यायालय को लागू नहीं होगी । उक्त अधिनियम की धारा 5(3) स्पष्ट करती है कि उक्त अधिनियम के अधीन विशेष न्यायालय सेशन न्यायालय है । अतः पुनरीक्षण की शक्ति और/अथवा अन्तर्निहित अधिकारिता का प्रयोग केवल उच्च न्यायालय द्वारा किया जा सकता है । अतः भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन मामलों में विचारणों में रोकादेश पारित नहीं किया जा सकता । यह बात नहीं है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन कार्यवाही अनुकूल नहीं हो सकती । समुचित मामलों में धारा 482 के अधीन कार्यवाहियां अनुकूल

हो सकती हैं । तथापि, भले ही दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका ग्रहण कर ली जाती है तो भी उक्त अधिनियम के अधीन विचारण में रोकादेश नहीं किया जा सकता । तब यह पक्षकारों का दायित्व है कि वह संबंधित न्यायालय को उस याचिका की शीघ्र सुनवाई करने के लिए रजामंद करे । तथापि, मात्र इसलिए कि संबंधित न्यायालय याचिका की सुनवाई प्रारंभ करने की स्थिति में नहीं है, विचारण को, भले ही अस्थायी रूप से, रोकने के लिए कोई आधार न होगा ।(पैरा 14,15,16 और 17)

अनेक मामलों में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन मामलों में उच्च न्यायालयों द्वारा रोकादेश प्रदान कर दिए गए हैं हालांकि कोई रोकादेश प्रदान करना विशिष्ट रूप से वर्जित है । अतः सभी उच्च न्यायालयों के रजिस्ट्रारों को निदेश दिया जाता है कि वे ऐसे सभी मामलों को सम्बद्ध न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध करें जिनमें रोकादेश प्रदान कर दिए गए हैं जिससे कि इस विनिश्चय के प्रकाश में उस न्यायालय द्वारा समुचित कार्यवाही की जा सके । (पैरा 20)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2000]	(2000) 1 एस.सी.सी. 168 : **इन्दिरा साहनी** बनाम **भारत संघ और अन्य;**	13,15
[1997]	(1997) 4 एस.सी.सी. 551 : **मधु लिमये** बनाम **महाराष्ट्र राज्य;**	13,15
[1992]	(1992) 4 एस.सी.सी. 305 : **जनता डील** बनाम **एच.एस. चौधरी और अन्य;**	13,15
[1969]	[1969] 2 एस.सी.आर. 65 : **आयकर अधिकारी** बनाम **एम.के. मोहम्मद कुन्ही ।**	8

दांडिक अपीली अधिकारिता : 2001 की दांडिक अपील सं. 981.

1994 की एकल न्यायपीठ दाण्डिक प्रकीर्ण याचिका सं. 578 में राजस्थान उच्च न्यायालय के तारीख 25 अप्रैल, 2001 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

उपस्थित होने वाले पक्षकारों की ओर से — सर्वश्री हरीश एन. साल्वे, महा न्यायवादी, सर्वश्री अश्विनी कुमार, पल्लव शिशोदिया, सुश्री शालिनी शिशोदिया, सर्वश्री हेमन्त शर्मा, रणबीर सिंह यादव, पी. परमेश्वरन, रणजी थॉमस और जावेद महमूद राव

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एस.एन. वरियावा ने दिया ।

न्या. वरियावा – इजाज़त दी गई ।

2. पक्षकारों की सुनवाई की गई ।

3. यह अपील तारीख 25 अप्रैल, 2001 के आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है । इस आदेश के द्वारा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम (जिसे इसमें इसके पश्चात् 'अधिनियम' कहा गया है) के अधीन गठित विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित तारीख 8 जुलाई, 1994 के आदेश को अभिखंडित करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक दांडिक प्रकीर्ण आवेदन खारिज किया गया है ।

4. तारीख 8 जुलाई, 1984 को विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 420, 467, 468 और 471 और उक्त अधिनियम की धारा 5(2) के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए संज्ञान किया । तब

अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष 1984 का प्रकीर्ण आवेदन सं.578 फाइल किया और विचारण का रोकादेश प्राप्त किया । विचारण में रोकादेश प्राप्त करने के उपरांत प्रकीर्ण आवेदन की सुनवाई को समय-समय पर स्थगित करवाया गया । इस पद्धति से अपीलार्थी ने विचारण को सात वर्षों तक सफलतापूर्वक विलम्बित किया ।

5. हम पाते हैं कि इस मामले में जो कुछ हुआ है वह बड़ी संख्या में मामलों में घटित हो रहा है । लोक कार्यालयों में भ्रष्टाचार प्रबल हो रहा है । जब लोक सेवकों को उक्त अधिनियम के अधीन अभियोजित करने की ईप्सा की जाती है, तब दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन पुनरीक्षण फाइल करके अथवा दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन फाइल करके विचारणों के रोकादेश प्राप्त कर लिए जाते हैं और पक्षकार सफलतापूर्वक विचारणों को विलम्बित करवाते रहते हैं । न्यायालयों द्वारा रोकादेश उक्त अधिनियम की धारा 19(3)(ग) के उपबंधों पर विचारण किए बिना और/अथवा उसके उल्लंघन में प्रदान कर दिए जाते हैं । इससे लोक सेवकों के विरुद्ध भ्रष्टाचार का मुकाबला करने में प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । अतः यह आवश्यक हो गया है कि कानून को दोहराया जाए । अतः हमने इस आवेदन की मात्र विधि के इस प्रश्न के संबंध में सुनवाई की है कि क्या भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन विचारण रोके जा सकते हैं ।

6. श्री शिशोदिया ने निवेदन किया कि उक्त अधिनियम की धारा 27 के आधार पर उच्च न्यायालय दण्ड प्रक्रिया संहिता के अधीन अपील और पुनरीक्षण की समस्त शक्तियों का इस प्रकार प्रयोग कर सकती है मानो कि विशेष न्यायाधीश का न्यायालय जो सेशन न्यायालय हो । उन्होंने आगे यह निवेदन किया कि उक्त अधिनियम की धारा 22 और 23 यह स्पष्ट करती है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता विशेष न्यायाधीश के समक्ष उक्त अधिनियम के अधीन दण्डनीय किसी अपराध के संबंध में कार्यवाहियों पर लागू होगी ।

7. श्री शिशोदिया ने निवेदन किया कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित अधिकारिता उसकी पुनरीक्षण की अधिकारिता से भिन्न है । उन्होंने निवेदन किया कि विशेष न्यायालय (उक्त अधिनियम के अधीन) उच्च न्यायालय के अधीनस्थ था । उन्होंने निवेदन किया कि उच्च न्यायालय में निहित अन्तर्निहित शक्ति उन सीमाओं द्वारा परिवंचित नहीं थी जो पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग करने के समय होती हैं। उन्होंने निवेदन किया कि अन्तरिम आदेश पारित करने की शक्ति, स्थगन आदेश की भांति न्यायालय की अन्तर्निहित शक्तियों का भाग थी । उन्होंने निवेदन किया कि ऐसा आवश्यक रूप से होना चाहिए अन्यथा न्यायालय अपने में निहित अधिकारिता का प्रयोग प्रभावी रूप से नहीं कर सकेगी।

8. इस अंतिम निवेदन के समर्थन में उन्होंने **आयकर अधिकारी** बनाम **एम.के. मोहम्मद कुन्ही**[1] वाले मामले का अवलंब लिया । यह मामला आयकर अधिनियम के अधीन था । निर्धारिती पर आय छिपाने और गलत विवरण देने के लिए कतिपय धनराशि की शास्ति अधिरोपित की गई थी । निर्धारिती ने अपील फाइल की और शास्ति की वसूली को रोकने के लिए प्रार्थना की । अधिकरण ने इस आधार पर वसूली पर रोक लगाने से इनकार कर दिया कि उसे ऐसा करने की शक्ति नहीं है । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि अधिकरण को वसूली को रोकने की अन्तर्निहित शक्ति प्राप्त थी और अधिकरण को वसूली को रोकने संबंधी आवेदन का निपटारा विधि के अनुसार करने का निदेश दिया । आयकर अधिकारी द्वारा की गई अपील में इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निष्कर्ष की पुष्टि कर दी कि अधिकरण को वसूली रोकने की शक्ति प्राप्त थी । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि रोकने की शक्ति न्यायालय की अपीली अधिकारिता की अनुषंगी थी । इस बात का तुरंत उल्लेख किया जाना चाहिए कि रोकने का आदेश प्रदान करने को वर्जित करने वाला कोई कानूनी उपबंध नहीं था ।

9. श्री शिशोदिया ने इसके अतिरिक्त यह निवेदन किया कि इस न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने समय-समय पर और यहां तक कि उक्त अधिनियम के अधीन लम्बित कार्यवाहियों को अभिखंडित करने के लिए भी दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अन्तर्निहित अधिकारिता का प्रयोग किया है । उन्होंने निवेदन किया कि

[1] [1969] 2 एस.सी.आर. 65.

मामले को सुनवाई के प्रक्रम तक पहुंचने में कई वर्ष लग जाते हैं । उन्होंने यह भी निवेदन किया कि यह आत्यांतिक रूप से आवश्यक था कि ऐसी कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान विचारण को रोक दिया जाना चाहिए । उन्होंने निवेदन किया कि अन्यथा विलक्षण स्थिति उत्पन्न हो जाएगी चूंकि विचारण उच्च न्यायालय द्वारा स्वयं आरोप की वैधता की परीक्षा किए जाने से पूर्व ही समाप्त हो जाएगा ।

10. श्री शिशोदिया ने अगला निवेदन यह किया कि उक्त अधिनियम की धारा 19 में "कोई न्यायालय" अभिव्यक्ति में उच्च न्यायालय सम्मिलित नहीं होगा । उन्होंने निवेदन किया कि यह केवल उस न्यायालय को लागू होती है जिसे विशेष न्यायालय पर पुनरीक्षण की अधिकारिता प्राप्त है । उन्होंने निवेदन किया कि विशेष न्यायालय के अनेक न्यायाधीश सहायक सेशन न्यायाधीश थे । उन्होंने निवेदन किया कि इस प्रकार पुनरीक्षण शक्ति का प्रयोग सेशन न्यायालयों द्वारा किया जाएगा ।

11. श्री शिशोदिया ने अगला निवेदन यह किया कि धारा 19(3)(ग) केवल पुनरीक्षण की उन शक्तियों पर लागू होती है जो दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 397 के अधीन प्रयोग की जाती हैं न कि अन्तर्निहित अधिकारिता के मामलों पर, जिसका प्रयोग उच्च न्यायालय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन करता है ।

12. दूसरी ओर, विद्वान् महान्यायवादी ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के उद्देश्यों और कारणों के कथन का उल्लेख किया । भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के उद्देश्यों और कारणों के कथन का सुसंगत भाग इस प्रकार है :–

> "2. भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1947 को सन्थानम समिति की सिफारिशों के आधार पर 1964 में संशोधित किया गया था । भारतीय दण्ड संहिता के अध्याय IX में लोक सेवकों और उन व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने के उपबंध हैं, जो लोक सेवकों को आपराधिक अवचार करने के लिए दुष्प्रेरित करते हैं । आपराधिक विधि संशोधन अध्यादेश, 1944 में भी भ्रष्ट उपायों के माध्यम से अवैध रूप से अर्जित की गई सम्पत्ति को, जिसके अंतर्गत ऐसी संपत्ति के अंतरितियों से प्राप्त संपत्ति भी है, कुर्क करने के लिए समर्थ बनाने वाले उपबंध हैं । अधिनियम में उन सभी उपबंधों को परिवर्तनों के साथ सम्मिलित करने की ईप्सा की गई है जिससे कि लोक सेवकों के मध्य भ्रष्टाचार की रोकथाम संबंधी उपबंधों को अधिक प्रभावी बनाया जा सके ।
>
> 3. अधिनियम, अन्य बातों के साथ "लोक सेवक" अभिव्यक्ति की परिभाषा की परिधि को विस्तृत करने, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 161 से 165-क के अधीन अपराधों को सम्मिलित करने, इन अपराधों के लिए उपबंधित शास्तियों में वृद्धि करने और ऐसे उपबंध को सम्मिलित करने के लिए परिकल्पित है कि अभियोजन के लिए मंजूरी प्रदान करने के आदेश को कायम रखने वाला विचारण न्यायालय का आदेश अंतिम होगा यदि इसे पहले चुनौती नहीं दी गई है और विचारण आरम्भ हो चुका है । कार्यवाहियों में शीघ्रता लाने के लिए, मामलों के दिन-प्रतिदिन विचारण के लिए उपबंध और रोकने के आदेश प्रदान करने और अन्तर्वर्ती आदेशों के पुनरीक्षण की शक्तियों के प्रयोग के संबंध में प्रतिषेधात्मक उपबंधों को भी सम्मिलित किया गया है ।" (रेखांकन बल देने के लिए किया गया है)

13. विद्वान महासॉलिसिटर श्री साल्वे ने निवेदन किया कि न्यायालय की अन्तर्निहित अधिकारिता का प्रयोग तब तक नहीं किया जा सकता था यदि व्यथित पक्षकार की शिकायतों के निस्तारण के लिए अथवा किसी अन्य उपबंध में आरोपित विधि के किसी स्पष्ट वर्जन के विरुद्ध कोई विशिष्ट उपबंध हो । उन्होंने पुनः निवेदन किया कि अन्तर्निहित अधिकारिता का प्रयोग अपर्याप्त रूप से केवल किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए अथवा न्याय के उद्देश्य को सुनिश्चित करने के लिए किया जाना चाहिए । इस निवेदन के समर्थन में उन्होंने

मधु लिमये बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1], **जनता डील** बनाम **एच.एस. चौधरी और अन्य**[2] और **इन्दिरा साहनी** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3] वाले मामलों का अवलंब लिया ।

14. हमने पक्षकारों की सुनवाई की । उक्त अधिनियम की धारा 19(3)(ग) इस प्रकार है :–

"(3) दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)में किसी बात के होते हुए भी –

**** **** ****

(ग) कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन किसी अन्य आधार पर कार्यवाहियां नहीं रोकेगा और कोई न्यायालय किसी जांच, विचारण, अपील या अन्य कार्यवाही में पारित किसी अन्तर्वर्ती आदेश के संबंध में पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग नहीं करेगा ।"

अतः यह दृष्टव्य है कि इस धारा में यह उपबंध है :–

"(क) कि कोई न्यायालय अधिनियम के अधीन किसी आधार पर कार्यवाहियों को नहीं रोकेगा, और

(ख) कि कोई न्यायालय किसी जांच, विचारण, अपील या अन्य कार्यवाही में पारित किसी अन्तर्वर्ती आदेश के संबंध में पुनरीक्षण की शक्तियों का प्रयोग नहीं करेगा।"

यह उल्लेखनीय है कि उपरोक्त (ख) दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 397(2) के समरूप है जो न्यायालय की पुनरीक्षण की शक्तियों के संबंध में है । यदि धारा 19 केवल पुनरीक्षण की शक्तियों के संबंध में थी तो उपरोक्त (ख) में उपवर्णित भाग पर्याप्त होता । अतः विधायिका ने "कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन किसी अन्य आधार पर कार्यवाहियों को नहीं रोकेगा" शब्दों को जोड़कर स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित किया है कि कोई स्थगन किसी आधार पर किसी शक्ति का प्रयोग करके प्रदान नहीं किया जा सकता था । अतः यह उस स्थिति में भी लागू होगा जिसमें कोई न्यायालय दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अन्तर्निहित अधिकारिता का प्रयोग करता है ।

15. एक अन्य कारण भी है जिसके कारण यह निवेदन स्वीकार नहीं किया जा सकता कि भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 19 उच्च न्यायालय की अन्तर्निहित अधिकारिता पर लागू नहीं होगी । दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 19 "इस संहिता में किसी बात के होते हुए भी" शब्दों से आरंभ होती है । अतः अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है भले ही दण्ड प्रक्रिया संहिता में प्रतिकूल उपबंध हों । दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 में यह उपबंध नहीं है कि अन्तर्निहित अधिकारिता का प्रयोग किसी अन्य अधिनियमिति में किसी अन्य उपबंध के होते हुए भी किया जा सकता है । अतः यदि किसी अधिनियमिति में विशिष्ट वर्जन है तो उस वर्जन को समाप्त करने के लिए अन्तर्निहित अधिकारिता का प्रयोग नहीं किया जा सकता । जैसाकि **मधु लिमये** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1], **जनता डील** बनाम **एच.एस. चौधरी और अन्य**[2] और **इन्दिरा साहनी** बनाम **भारत संघ और अन्य**[3] वाले मामलों में इंगित किया गया है, अन्तर्निहित अधिकारिता की अधिकारिता का उस दशा में अवलंब नहीं लिया जा सकता यदि कोई विशिष्ट उपबंध हो अथवा विधि का कोई अभिव्यक्त वर्जन हो ।

---

[1] (1997) 4 एस.सी.सी. 551.
[2] (1992) 4 एस.सी.सी. 305.
[3] (2000) 1 एस.सी.सी. 168.

16. हम इस निवेदन में कोई सार नहीं पाते कि धारा 19 किसी उच्च न्यायालय को लागू नहीं होगी । उक्त अधिनियम की धारा 5(3) स्पष्ट करती है कि उक्त अधिनियम के अधीन विशेष न्यायालय सेशन न्यायालय है । अतः पुनरीक्षण की शक्ति और/अथवा अन्तर्निहित अधिकारिता का प्रयोग केवल उच्च न्यायालय द्वारा किया जा सकता हैं ।

17. अतः भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन मामलों में विचारणों में रोकादेश पारित नहीं किया जा सकता । हम स्पष्ट करते हैं कि हमारा यह कहना नहीं है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन कार्यवाही अनुकूल नहीं हो सकती । समुचित मामलों में धारा 482 के अधीन कार्यवाहियां अनुकूल हो सकती हैं । तथापि, भले ही दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन याचिका ग्रहण कर ली जाती है तो भी उक्त अधिनियम के अधीन विचारण में रोकादेश नहीं किया जा सकता । तब यह पक्षकारों का दायित्व है कि वह संबंधित न्यायालय को उस याचिका की शीघ्र सुनवाई करने के लिए रजामंद करे । तथापि, मात्र इसलिए कि संबंधित न्यायालय याचिका की सुनवाई प्रारंभ करने की स्थिति में नहीं है, विचारण को, भले ही अस्थायी रूप से, रोकने के लिए कोई आधार न होगा ।

18. इस अपील में हम आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए कोई कारण नहीं पाते हैं । अपील खारिज की जाती है । हम यह स्पष्ट करते हैं कि मामले के गुणागुण के संबंध में हमारे समक्ष बहस नहीं की गई है । अतः हम मामले के गुणागुण पर कोई विचार व्यक्त नहीं कर रहे हैं ।

19. चूंकि विचारण पहले ही विलम्बित हो चुका है इसलिए हम यह निदेश देते हैं कि विचारण की सुनवाई दिन-प्रतिदिन के आधार पर की जाए और उसे आज से छह माह की अवधि के भीतर समाप्त किया जाए ।

20. हमारे ध्यान में यह लाया गया है कि अनेक मामलों में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के अधीन मामलों में उच्च न्यायालयों द्वारा रोकादेश प्रदान कर दिए गए हैं हालांकि कोई रोकादेश प्रदान करना विशिष्ट रूप से वर्जित है । अतः हम सभी उच्च न्यायालयों के रजिस्ट्रारों को निदेश देते हैं कि वह ऐसे सभी मामलों को सम्बद्ध न्यायालय के समक्ष सूचीबद्ध करें जिनमें रोकादेश प्रदान कर दिए गए हैं जिससे कि इस विनिश्चय के प्रकाश में उस न्यायालय द्वारा समुचित कार्यवाही की जा सके । इस न्यायालय के रजिस्ट्रार को निदेश दिया जाता है कि सभी उच्च न्यायालयों के रजिस्ट्रारों को इस आदेश की एक प्रति भेज दी जाए ।

21. खर्चे के संबंध में कोई आदेश पारित नहीं किया जाता है ।

न्या. थॉमस –

22. मैं न्यायमूर्ति वरियावा द्वारा तैयार किए गए निर्णय से ससम्मान सहमत हूं । जब संसद् ने भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (संक्षेप में 'अधिनियम') के अधीन किए गए अपराध के संबंध में किसी भी आधार पर किसी कार्यवाही को रोकने को पक्के रूप से वर्जित कर दिया है, तो कोई भी न्यायालय उपरोक्त वर्जन को किसी भी रूप में परिवंचित नहीं करेगी । वह कारण जिससे संसद् भारत के सभी न्यायालयों को विचारण न्यायालयों में ऐसी कार्यवाहियों को, जिनमें ऐसा कोई अपराध अंतर्वलित हो, रोकने की शक्ति से निर्निहित करने के लिए प्रेरित हुआ, उस प्रत्येक संभव अवसर को समाप्त करना है जिसके आधार पर ऐसी कार्यवाहियों के किसी पक्षकार द्वारा विचारण कार्यवाहियों के लम्बित रहने के दौरान उच्च न्यायालय के समक्ष कोई प्रश्न उठाकर ऐसे विचारणों को विलंबित किया जा सकता है ।

23. इस अधिनियम को नए अध्युपायों के साथ लाने संबंधी उद्देश्यों और कारणों में कानून के निर्माताओं ने यह अत्यन्त स्पष्ट रूप से घोषित कर दिया कि रोकने का आदेश प्रदान करने से प्रतिषिद्ध करने वाला उपबंध कार्यवाहियों को शीघ्रता से निपटाने के लिए कानून में सम्मिलित किया गया है । इसे निम्नलिखित शब्दों में देखा जा सकता है :–

"कार्यवाहियों में शीघ्रता लाने के लिए, मामलों के दिन-प्रतिदिन विचारण के लिए उपबंध और रोकादेश प्रदान करने के संबंध में प्रतिषेधात्मक उपबंध और अन्तर्वर्ती आदेशों की पुनरीक्षण संबंधी शक्तियों के प्रयोग के संबंध में उपबंधों को भी सम्मिलित किया गया है ।"

24. यह प्रतिषेध ऐसी भाषा में व्यक्त किया गया है जिसमें किसी प्रकार का कोई अपवाद सम्मिलित नहीं किया गया है । यह प्रतिषेध अधिनियम की धारा 19 की उपधारा (3) में सम्मिलित किया गया है । इस उपधारा में तीन खण्ड अन्तर्विष्ट हैं । सभी तीन खण्डों के लिए आरंभिक भाग में नियंत्रक सर्वोपरि शब्द उपवर्णित हैं, जो इस प्रकार हैं :–

"दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 में किसी बात के होते हुए भी ।"

अतः संहिता के किसी भी उपबंध का उपधारा में प्रगणित किसी भी वर्जन को परिवंचित करने के लिए अवलम्ब नहीं लिया जा सकता ।

25. उपधारा का खण्ड (क) विशेष न्यायाधीश द्वारा निकाले गए किसी निष्कर्ष अथवा पारित किसी दंडादेश अथवा आदेश को उलटने अथवा उसके परिवर्तन को अधिनियम के अधीन दण्डनीय अपराध का संज्ञान लेने के लिए अपेक्षित मंजूरी प्राप्त करने में हुई त्रुटि, लोप अथवा अनियमितता के अभाव के आधार पर तब तक प्रतिषिद्ध करती है जब तक कि अपीली अथवा पुनरीक्षण न्यायालय की राय में " उसके द्वारा न्याय में असफलता वास्तव में हुई हो ।"

26. खण्ड (ख) में इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को रोकने के विरुद्ध प्रतिषेध अन्तर्विष्ट हैं, किन्तु यह मात्र मंजूरी देने के पहलू तक ही निर्बंधित है । मंजूरी देने में हुई त्रुटि, लोप अथवा अनियमितता इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों को रोकने का तब तक आधार नहीं होगी "जब तक कि इस बात का समाधान नहीं हो जाता कि ऐसी त्रुटि, लोप अथवा अनियमितता के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है ।" यह अवधारित करने के लिए कि क्या ऐसी कोई न्याय की विफलता हुई थी, यह आज्ञापक है कि न्यायालय इस तथ्य का ध्यान रखेगा कि क्या उस पहलू के संबंध में आक्षेप कार्यवाहियों के किसी पूर्ववर्ती प्रक्रम पर उठाया जा सकता था या उठाया जाना चाहिए ।–हम यह बताना चाहते हैं कि मात्र यह कारण कि मंजूरी के संबंध में आक्षेप आरंभिक प्रक्रम पर उठाए गए थे, यह अवधारित करने का आधार नहीं है कि न्याय की विफलता हुई थी । यदि विशेष न्यायाधीश ने उस पहलू के संबंध में उठाए गए आक्षेप को नामंजूर कर दिया है तो साधारण रूप से यह कल्पनातीत होता है कि न्याय की कोई विफलता हो सकती थी, भले ही उन आक्षेपों की उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि कर दी गई हो । किसी आक्षेप को मंजूरी के आधार पर उलट देने से मामला अभियुक्त के लिए हानिकारक रूप से समाप्त नहीं हो जाता । यह केवल अदालत को लोक सेवक के विरुद्ध अभिकथनों की न्यायिक रूप से परीक्षा करने की शक्ति प्रदान करता है । अतः यह दर्शित करना एक कठिन कार्य है कि मंजूरी के मामले में किसी आक्षेप को रोकने के परिणामस्वरूप न्याय की विफलता हुई है । इसका परिणाम यह है: उच्च न्यायालय सामान्यतः इस आधार पर रोकादेश प्रदान नहीं करेगा ।

27. उपधारा के खण्ड (ग) में प्रतिषेध को निरपवाद शब्दों में व्यक्त किया गया है । यह इस प्रकार है :–

"कोई न्यायालय इस अधिनियम के अधीन किसी अन्य आधार पर कार्यवाहियां नहीं रोकेगा ।"

28. मात्र इस तथ्य का कि उपरोक्त के साथ-साथ एक अन्य प्रतिषेध जुड़ा हुआ था, यह अर्थ नहीं है कि खण्ड (ग) में अंतर्विष्ट विधायी वर्जन केवल उस स्थिति तक सीमित है जब उच्च न्यायालय पुनरीक्षण संबंधी शक्तियों का प्रयोग करता है । यह अधिनियमिति का गलत निर्वचन होगा, यदि कोई न्यायालय धारा 19(3)के खण्ड (ग) का इस प्रकार अर्थान्वयन करे कि उसमें उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों के प्रयोग के अंतर्गत रोकादेश करने की शक्ति है ।

29. हमें अवगत कराया गया है कि अनेक उच्च न्यायालय उक्त वर्जन को अनदेखा करते हुए विशेष न्यायाधीशों के समक्ष लम्बित ऐसी कार्यवाहियों को रोकने के आदेश प्रदान कर रहे हैं जिनमें अधिनियम के अधीन अपराध अंतर्वलित हैं । यह संभवतः अधिनियम की धारा 19 की उपधारा (3) के खण्ड (ग) में अंतर्विष्ट विधायी वर्जन को न समझने के कारण होगा क्योंकि धारा 19 का शीर्षक "अभियोजन के लिए पूर्व मंजूरी का आवश्यक होना" है । यह और भी उपयुक्त होता यदि उपधारा (3) में अन्तर्विष्ट प्रतिषेध पृथक् धारा में पृथक् सुस्पष्ट शीर्षक के साथ सम्मिलित किया जाता । वर्तमान स्थिति में भी, वह उपधारा में अन्तर्विष्ट विधायी प्रतिषेध को अनदेखा करने का कोई आधार नहीं है ।

30. मैं, इस निर्णय में न्यायमूर्ति वरियावा द्वारा उपदर्शित इस निदेश से पूर्णतः सहमत हूं कि प्रत्येक उच्च न्यायालय के रजिस्ट्रार उन मामलों को सूचीबद्ध करेंगे जिनमें ऐसे उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेशों द्वारा कार्यवाही रोकने के ऐसे आदेश पारित किए गए थे और उन सभी मामलों को और कोई विलंब किए बिना समुचित न्यायपीठ के समक्ष रखेंगे । यह सम्बद्ध उच्च न्यायालय को इस निर्णय के प्रकाश में ऐसे मामलों का निपटारा करने के लिए समर्थ बनाने के लिए किया जा रहा है ।

अपील खारिज की गई ।

शु./ला.

[2003] 2 उम.नि.प. 267

एस. एच. रंगप्पा

बनाम

कर्नाटक राज्य और एक अन्य

3 अक्तूबर, 2001

न्यायमूर्ति बी. एन. कृपाल , न्यायमूर्ति एन. संतोष हेगड़े और न्यायमूर्ति पी. वेकटराम रेड्डी

भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 (1894 का 1)[भूमि अर्जन (संशोधन) अधिनियम, 1984 द्वारा यथा संशोधित] – धारा 6(2), धारा 6(1)का परन्तुक और धारा 4 – धारा 6(2) के अधीन भूमि अर्जन सम्बन्धी घोषणा के प्रकाशन का परिसीमाकाल – धारा 6(1) के अधीन की गई घोषणा को धारा 4 के अधीन अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से एक वर्ष की अवधि के भीतर धारा 6(2) के अधीन प्रकाशित कराने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि धारा 6(1) के प्रथम परन्तुक के अधीन विहित अवधि केवल घोषणा करने के सम्बन्ध में है न कि उसके प्रकाशन के सम्बन्ध में ।

शब्द और पद – "प्रकाशित" और "अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से" पद केवल धारा 4 की अधिसूचना के प्रति निर्देश करते हैं ।

इस मामले में विचार के लिए एकमात्र प्रश्न जो उद्भूत हुआ वह यह है कि क्या भूमि अर्जन अधिनियम, 1894 की धारा 6(2) के अधीन अधिसूचना उक्त अधिनियम की धारा 6(1) के परन्तुक में विहित अवधि के भीतर प्रकाशित की जानी चाहिए । तारीख 29 नवम्बर, 1987 की अधिसूचना तारीख 28 जनवरी,1988 को राजपत्र में जारी और प्रकाशित की गई थी। यह अधिसूचना समाचारपत्र में तारीख 23 फरवरी, 1988 को प्रकाशित की गई थी। यह अधिसूचना अधिनियम की धारा 4(1) के अधीन जारी की गई थी जिसमें यह कथन किया गया था कि इसकी अनुसूची में उपदर्शित भूमि आवासों के सन्निर्माण के लोक प्रयोजन के लिए अर्जित करना आशयित था। हितबद्ध व्यक्तियों को सूचित किया गया कि वे प्रस्तावित अर्जन के विरुद्ध आक्षेप फाइल कर सकते हैं। समाचारपत्र में यह अधिसूचना तारीख 23 फरवरी, 1988 को प्रकाशित की गई थी, जिसके पश्चात् अधिनियम की धारा 5क के अधीन